[2010] 8 एस.सी.आर. 811

मन्नू साव

बनाम

बिहार राज्य

(आपराधिक अपील संख्या 1165 वर्ष 2009)

22 जुलाई, 2010

[डॉ. बी.एस. चौहान एवं स्वतंत्र कुमार, न्यायमूर्ति]

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 – धारा 302 एवं 201 – हत्या – अपराध के साक्ष्य को लुप्त करना – अभियुक्त का कथन कि उसने अपनी पत्नी को जली हुई अवस्था में पड़ा पाया तथा तत्पश्चात उसकी मृत्यु हो गई – अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा धारा 302 एवं 201 के अंतर्गत दोषसिद्धि एवं दण्डादेश – हस्तक्षेप – क्या उचित है – निर्णय : नहीं। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में, संपूर्ण अभियोजन प्रकरण के अतिरिक्त, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्त द्वारा दिया गया कथन भी महत्वपूर्ण हो सकता है। अभियुक्त ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि मृतका उसकी पत्नी थी तथा उसकी मृत्यु जलने से हुई थी। तथापि, उसका कथन था कि मृतका ने स्वयं को आग लगाकर आत्महत्या कर ली थी। अभियुक्त ने यह भी कहा कि पीड़िता उस समय जीवित थी तथा उसका जला हुआ शरीर झोपड़ी के बाहर पड़ा था। उसने एक व्यक्ति की सहायता लेकर पीड़िता को चिकित्सक के पास ले जाने का प्रयास करने की बात कही, किन्तु उस व्यक्ति को न तो साक्षी के रूप में परीक्षित किया गया और न ही उसका नाम धारा 313 के कथन में बताया गया। चिकित्सकीय साक्ष्य से यह सिद्ध हुआ कि मृत्यु गला दबाकर की गई थी और उसके बाद शव को जलाया गया था। अभियोजन द्वारा प्रस्तुत प्रेरक कारण भी युक्तिसंगत था। यह विश्वास करना भी कठिन है कि कोई व्यक्ति बिना किसी उकसावे अथवा घटना के, जो

घटना के ठीक पूर्व घटित हुई हो, आत्महत्या कर ले। अभियोजन द्वारा सिद्ध की गई परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति की हैं।

साक्ष्य – आपराधिक विधि – प्रेरक कारण, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 313 – आवश्यक विशेषताएँ – विवेचित।

अभियोजन के अनुसार, अपीलकर्ता ने थाना में एक प्रतिवेदन दर्ज कराया कि वह अपनी पत्नी बी.ओ. के साथ अपनी झोपड़ी में रहता था। घटना के दिन अपीलकर्ता ने बी.ओ. को अपनी झोपड़ी के सामने गंभीर रूप से जली हुई अवस्था में पाया। अपीलकर्ता ने बी.बी. की सहायता से बी.ओ. को चिकित्सक के पास ले जाने का प्रयास किया। तथापि, बी.ओ. की मृत्यु हो गई। पी.डब्ल्यू.-3 चिकित्सक ने शव परीक्षण किया। उसका मत था कि बी.ओ. की मृत्यु गला दबाने तथा जीवनकालीन चोटों के कारण हुई थी और उसके बाद जलने की चोटें पहुँचाई गई थीं। इसके पश्चात भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 एवं 201 के अंतर्गत अपराध पंजीकृत किया गया। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को धारा 302 एवं 201 के अंतर्गत दोषी ठहराया। उसे धारा 302 के अंतर्गत आजीवन कठोर कारावास तथा धारा 201 के अंतर्गत तीन वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि की। अतः अभियुक्त ने यह अपील प्रस्तुत की।

अपील निरस्त करते हुए, न्यायालय ने निर्णय दिया :

1.1 यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है क्योंकि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में भी अभियुक्त को दण्डित किया जा सकता है, यदि अभियोजन संदेह से परे घटनाओं एवं परिस्थितियों की ऐसी पूर्ण श्रृंखला सिद्ध कर दे जो निश्चित रूप से संदिग्ध अथवा अभियुक्त की संलिप्तता और दोष की ओर संकेत करती हो। केवल इस

कारण कि मामले में कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, अभियुक्त दोषमुक्ति का अधिकारी नहीं हो जाता। स्वीकृत विधिक सिद्धांतों की पूर्ति होने पर अभियुक्त को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया जा सकता है। [अनुच्छेद 3] [821-बी-सी]

शरद बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1984 सर्वोच्च न्यायालय 1622, संदर्भित।

1.2 केवल एक परिस्थिति अथवा कुछ परिस्थितियाँ अपने आप में न्यायालय को दोषसिद्धि का आधार प्रदान नहीं कर सकतीं। किन्तु जब अभियुक्त के विरुद्ध प्रस्तुत समस्त परिस्थितियाँ संदेह से परे सिद्ध हो जाती हैं, तब दोषसिद्धि अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए तथा अन्य सहायक परिस्थितियों का उपयोग अभियोजन के मामले के पुष्टिकरण हेतु किया जा सकता है। न्यायालय के लिए यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि वह यह परीक्षण करे कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में जिन आवश्यकताओं की स्थापना अपेक्षित है, वे उसके समक्ष विचाराधीन मामले में पूर्ण होती हैं अथवा नहीं। परिस्थितिजन्य साक्ष्य वाले मामलों का अधिक सावधानी के साथ तथा अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्यों के सूक्ष्म परीक्षण द्वारा निर्णय किया जाना चाहिए। तभी न्यायालय अपराध के अवयवों के संदर्भ में साक्ष्यों का समुचित विश्लेषण कर किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकता है। [अनुच्छेद 6 एवं 7] [823-जी-एच; 824-ए-सी]

अनंत लागू बनाम बम्बई राज्य, ए.आई.आर. 1960 सर्वोच्च न्यायालय 500; *दयानिधि बिसोई बनाम उड़ीसा राज्य,* ए.आई.आर. 2003 सर्वोच्च न्यायालय 3915, संदर्भित।

2.1 परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में, विशेष रूप से, संपूर्ण अभियोजन प्रकरण के अतिरिक्त दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्त द्वारा दिया गया कथन भी अत्यंत सहायक हो सकता है। धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्त का कथन अभिलिखित करने का

उद्देश्य यह है कि अभियुक्त के विरुद्ध उपलब्ध समस्त दोषारोपक साक्ष्यों को उसके समक्ष रखा जाए ताकि उसे उन दोषारोपक परिस्थितियों का स्पष्टीकरण देने का अवसर प्राप्त हो। साथ ही, यदि वह चाहे तो अपराध में अपनी संलिप्तता अथवा असंलिप्तता के संबंध में अपना पक्ष अथवा कारण भी प्रस्तुत कर सके। न्यायालय को अभियुक्त का परीक्षण करने का अधिकार है, किन्तु यह तभी किया जा सकता है जब अभियोजन साक्ष्य समाप्त हो जाए। यह न्यायालय का अनिवार्य दायित्व है और इसका अनुपालन सुनिश्चित करने के अतिरिक्त न्यायालय को यह भी ध्यान रखना होता है कि अभियुक्त को अपने आचरण का उचित स्पष्टीकरण देने का निष्पक्ष अवसर प्राप्त हो। अभियुक्त के पास यह विकल्प होता है कि वह मौन रहे तथा साधारण अस्वीकारोक्ति करे, अथवा वैकल्पिक रूप से अपराध के कथित किए जाने में अपनी संलिप्तता के संबंध में अपना पक्ष एवं कारण प्रस्तुत करे। यह ऐसा कथन है जिसे अभियुक्त बिना किसी भय के देता है तथा जिसमें विपक्षी पक्ष को उसका प्रतिपरीक्षण करने का अधिकार नहीं होता। तथापि, यदि दिए गए कथन असत्य पाए जाते हैं, तो न्यायालय प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने तथा विधि के अनुसार आवश्यक परिणामी आदेश पारित करने का अधिकार रखता है। इस प्रावधान का प्रमुख उद्देश्य न्यायालय और अभियुक्त के बीच प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करना, अभियुक्त के समक्ष प्रत्येक महत्वपूर्ण दोषारोपक साक्ष्य रखना तथा उसे उसका उत्तर देने और स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करना है। [अनुच्छेद 7 एवं 8] [824-ए-एच; 825-ए-बी]

2.2 अभियुक्त के कथन का उपयोग, यदि उसमें कोई दोषमुक्तिकारी स्वीकारोक्ति निहित हो, तो उसकी सत्यता की परीक्षा करने के लिए किया जा सकता है। ऐसे कथन को किसी भी जांच अथवा विचारण में विचारार्थ लिया जा सकता है, किन्तु वह अपने आप में मामले का विधिवत् साक्ष्य नहीं होता। धारा 313(4) के प्रावधान स्पष्ट रूप से यह उपबंध करते हैं कि अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों को ऐसी जांच अथवा विचारण में विचारार्थ लिया जा सकता है तथा किसी अन्य

अपराध के संबंध में किसी अन्य जांच अथवा विचारण में अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है, यदि वे उत्तर यह प्रदर्शित करते हों कि उसने ऐसा अपराध किया है। अर्थात्, संहिता के प्रावधानों के अनुसार उसका उपयोग अनुमेय है, किन्तु उसकी अपनी सीमाएँ हैं। न्यायालय अभियुक्त के कथन के किसी भाग पर, अभियोजन द्वारा प्रस्तुत अन्य साक्ष्यों के साथ विचार करते हुए, विश्वास कर सकता है तथा उसे दोषी ठहरा सकता है; तथापि धारा 313 के अंतर्गत दिए गए कथनों को पृथक रूप से नहीं, बल्कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के साथ संयुक्त रूप से विचार किया जाना चाहिए। न्यायालयों ने अपने निर्णयों में यह महत्वपूर्ण सावधानी भी व्यक्त की है कि केवल धारा 313 के अंतर्गत दिए गए कथन के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा कथन स्वतंत्र एवं ठोस साक्ष्य का स्वरूप नहीं रखता। अभियुक्त द्वारा दिया गया कथन विचारण में सीमित सीमा तक उपयोग में लाया जा सकता है। किन्तु विधि न्यायालय पर यह दायित्व भी अधिरोपित करती है कि वह अभियुक्त द्वारा अपने कथन में लिए गए रुख पर विचार करे तथा उसका वस्तुनिष्ठ एवं समग्र मूल्यांकन करे। [अनुच्छेद 8 एवं 10] [825-बी से 825-एफ; 827-डी-ई]

विजेन्द्रजीत अयोध्या प्रसाद गोयल बनाम बम्बई राज्य, ए.आई.आर. 1953 सर्वोच्च न्यायालय 247; *अजय सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य*, (2007) 12 एस.सी.सी. 341; *हते सिंह भगत सिंह बनाम मध्य भारत राज्य*, ए.आई.आर. 1953 सर्वोच्च न्यायालय 468, संदर्भित।

3.1. यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता ने इस तथ्य का विवाद नहीं किया कि मृतका उसकी पत्नी थी तथा उसकी मृत्यु जलने से हुई थी। तथापि, उसका संस्करण यह था कि मृतका ने अपने ऊपर मिट्टी का तेल डालकर स्वयं को जला लिया और आत्महत्या कर ली। दूसरी ओर, अभियोजन का मुख्य आधार पी.डब्ल्यू.-3 चिकित्सक का कथन था, जिसके अनुसार मृतका की

मृत्यु पहले गला दबाकर की गई और उसके पश्चात उसके शव को जलाया गया। विचारण न्यायालय ने भी इन तथ्यों का संज्ञान लिया और उनका विस्तार से विवेचन किया। विचारण न्यायालय द्वारा किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों तथा साक्ष्यों के मूल्यांकन में उच्च न्यायालय ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया, बल्कि उन निष्कर्षों को दोहराते हुए उनसे अपनी सहमति व्यक्त की। [अनुच्छेद 12 एवं 15] [828-सी से 828-ई; 831-जी]

3.2. इस तथ्य पर कुछ विशेष बल दिया गया कि पी.डब्ल्यू.-2, जो सह-ग्रामीण था, ने अपने साक्ष्य में कहा कि उसे घटना के बारे में कोई जानकारी नहीं थी और उसने अन्वेषण पदाधिकारी के कहने पर प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर कर दिए थे। किन्तु अभियुक्त इससे कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि इस साक्षी का मुख्य उद्देश्य केवल यह सिद्ध करना था कि मृतका के जल जाने के पश्चात उसकी मृत्यु हुई थी। स्वयं अभियोजन के अनुसार भी वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था और ऐसा कुछ भी नहीं था जिसका वह खण्डन कर सकता, क्योंकि अभियोजन मुख्यतः पी.डब्ल्यू.-3 एवं पी.डब्ल्यू.-4 के कथनों पर निर्भर था। [अनुच्छेद 16] [831-एच; 832-ए-बी]

3.3. पी.डब्ल्यू.-3 चिकित्सक, जिसने मृतका के शव का शव परीक्षण किया था, ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि मृतका की हत्या गला दबाकर की गई थी और उसके बाद उसे जलाने की चोटें पहुँचाई गई थीं। पी.डब्ल्यू.-3 के प्रतिपरीक्षण में ऐसा कोई महत्वपूर्ण तथ्य सामने नहीं आया जो अभियुक्त के पक्ष को सहायता पहुँचा सके। अभियुक्त ने स्वीकार किया कि मृतका उसकी पत्नी थी तथा उसके साथ झोपड़ी में रहती थी। अभिलेख के आधार पर उच्च न्यायालय ने भी यह तथ्य दर्ज किया कि मृतका अपने पूर्व पति से अलग हो चुकी थी और अभियुक्त के साथ रह रही थी, जबकि अभियुक्त भी अपने परिवार से अलग रह रहा था। ग्रामीणों को अभियुक्त और मृतका का इस प्रकार साथ रहना आपत्तिजनक लगता था। इन परिस्थितियों में मृतका की मृत्यु

के कारण का स्पष्टीकरण देने का दायित्व पति अर्थात् अभियुक्त पर था। उसने यह स्पष्टीकरण दिया कि मृतका ने स्वयं को जलाकर आत्महत्या कर ली थी, किन्तु इस स्पष्टीकरण पर विश्वास नहीं किया गया। अभियुक्त ने स्वयं कहा कि जब उसने देखा कि मृतका अभी जीवित थी और उसका जला हुआ शरीर उनकी झोपड़ी के बाहर मिर्च के खेत में पड़ा था, तब उसने बी.बी. की सहायता ली थी। किन्तु उसने न तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अपने कथन में बी.बी. का नाम लिया और न ही उसे साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया। सामान्य परिस्थितियों में यह अनुमान लगाया जाएगा कि यदि उक्त साक्षी को न्यायालय में प्रस्तुत कर परीक्षित किया जाता, तो वह ऐसा सत्य कथन करता जो अभियुक्त के अनुकूल नहीं होता। सर्वोत्तम रूप से ज्ञात कारणों से, जो कभी स्पष्ट नहीं किए गए, बी.बी. को साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया, जबकि अभियुक्त ने धारा 313 के अंतर्गत अंतिम प्रश्न के उत्तर में कहा था कि वह निर्दोष है और जो कुछ कहना चाहता है उसे लिखित रूप में प्रस्तुत करेगा। इसके बावजूद अपीलकर्ता की ओर से कोई प्रतिरक्षा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। [अनुच्छेद 16] [831-एच; 832-ए से 832-एच]

3.4. पी.डब्ल्यू.-1 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि अभियुक्त का नलकूप गाँव एम में उसके खलिहान के उत्तर दिशा में स्थित था तथा मृतका अभियुक्त के साथ रहती थी। घटना के दिन लगभग प्रातः 10 बजे जब वह वहाँ गया, तब उसने मृतका को जली हुई अवस्था में देखा। उसके अनुसार पुलिस वहाँ आई और पंचनामा तैयार किया, जिस पर उसने हस्ताक्षर किए। पी.डब्ल्यू.-1 का कथन एक सत्यवादी साक्षी का कथन प्रतीत होता है और उसने अपने कथन में न तो कोई बात जोड़ी और न ही घटाई, बल्कि वही कहा जो उसने अन्वेषण के दौरान पुलिस के समक्ष कहा था। उसके कथन के आलोक में, पी.डब्ल्यू.-2 को पक्षद्रोही घोषित किए जाने का महत्व अत्यंत नगण्य रह जाता है। आश्चर्यजनक रूप से, पी.डब्ल्यू.-1 से भी प्रतिपरीक्षण में यह

प्रश्न नहीं पूछा गया कि घटनास्थल पर बी.बी. नामक व्यक्ति उपस्थित था, जिसकी सहायता अभियुक्त ने मृतका को अस्पताल ले जाने हेतु ली थी। [अनुच्छेद 16] [832-एच; 833-ए-सी]

3.5. पी.डब्ल्यू.-3 चिकित्सक का यह साक्ष्य कि मृत्यु श्वासावरोध, आघात तथा रक्तस्राव के परिणामस्वरूप हुई, जो गला दबाने और वर्णित चोटों के कारण उत्पन्न हुए थे, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में अपेक्षित शर्तों को स्पष्ट रूप से पूर्ण करता है। अभियोजन द्वारा सिद्ध की गई परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति की हैं तथा वे किसी अन्य ऐसे दृष्टिकोण की संभावना को समाप्त कर देती हैं जिसे तर्कसंगत एवं युक्तिसंगत रूप से स्वीकार किया जा सके। वास्तविक स्थिति यह है कि मृतका की मृत्यु उस समय हुई जब वह अपीलकर्ता के साथ रह रही थी। अतः अपीलकर्ता को अपने आचरण का स्पष्टीकरण देना चाहिए था तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में मृतका की मृत्यु के कारण के संबंध में उससे यथोचित स्पष्टीकरण अपेक्षित था। [अनुच्छेद 17 एवं 18] [833-जी-एच]

4. किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए प्रेरक कारण (मोटिव) का सिद्ध किया जाना पूर्णतः अनिवार्य नहीं है, बशर्ते अभियोजन अपने मामले को संदेह से परे सिद्ध करने में सफल हो जाए। वर्तमान मामले में मृतका अपने पूर्व पति को छोड़कर अपीलकर्ता के साथ रहने लगी थी और अपीलकर्ता भी अपने परिवार से अलग अपने कृषि क्षेत्र में स्थित झोपड़ी में रह रहा था, जहाँ यह घटना घटित हुई। ग्रामीणों द्वारा उनके इस प्रकार साथ रहने का निश्चित रूप से विरोध किया गया था। पी.डब्ल्यू.-4 का कथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। चिकित्सकीय साक्ष्य से भी यह सिद्ध हुआ कि मृतका के शरीर को जलाने से पूर्व उसका गला दबाया गया था। सामाजिक अपमान अथवा सामाजिक असहजता अपीलकर्ता द्वारा अपराध किए जाने का एक संभावित प्रेरक कारण हो सकती थी। इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता ने न्यायालय के समक्ष यह गलत, यदि असत्य नहीं तो, कथन किया कि घटना उसकी अनुपस्थिति में हुई थी। जिस प्रकार

उसने यह कहा कि उसने मृतका को अस्पताल ले जाने के लिए भोला बाबू से सहायता माँगी थी, वह आचरण भी सही प्रतीत नहीं होता। अपीलकर्ता ने इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए किसी भी साक्षी को परीक्षित कराने का कोई प्रयास नहीं किया। उसने स्वीकार किया कि मृतका की मृत्यु उसकी आँखों के सामने हुई, फिर भी उसने तत्क्षण कोई प्रयास नहीं किया और केवल बाद में पुलिस को सूचना दी। अभियोजन द्वारा प्रस्तुत प्रेरक कारण युक्तिसंगत प्रतीत होता है तथा अपीलकर्ता जैसी परिस्थिति में स्थित व्यक्ति के व्यवहार के अनुरूप भी है। यह विश्वास करना भी कठिन है कि कोई व्यक्ति बिना किसी उकसावे अथवा घटना के, जो घटना के ठीक पूर्व घटित हुई हो, आत्महत्या कर ले। दोनों न्यायालयों ने अपीलकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण पर उचित रूप से अविश्वास किया है और भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं है। [अनुच्छेद 19] [834-डी-एच; 835-बी-एच]

भीमप्पा चन्दप्पा होसमानी बनाम कर्नाटक राज्य, (2006) 11 एस.सी.सी. 323, संदर्भित।

5. विवादित निर्णय में विधि अथवा अन्य किसी दृष्टि से कोई त्रुटि नहीं है। दोषसिद्धि का निष्कर्ष तथा दण्डादेश, दोनों में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। [अनुच्छेद 20] [835-डी]

संदर्भित निर्णय

- शरद बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1984 सर्वोच्च न्यायालय 1622 — संदर्भित, अनुच्छेद 5
- अनंत लागू बनाम बम्बई राज्य, ए.आई.आर. 1960 सर्वोच्च न्यायालय 500 — संदर्भित, अनुच्छेद 5

- **दयानिधि बिसोई बनाम उड़ीसा राज्य, ए.आई.आर. 2003 सर्वोच्च न्यायालय 3915 — संदर्भित, अनुच्छेद 6**
- **विजेन्द्रजीत अयोध्या प्रसाद गोयल बनाम बम्बई राज्य, ए.आई.आर. 1953 सर्वोच्च न्यायालय 247 — संदर्भित, अनुच्छेद 8**
- **अजय सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2007) 12 एस.सी.सी. 341 — संदर्भित, अनुच्छेद 9**
- **हते सिंह भगत सिंह बनाम मध्य भारत राज्य, ए.आई.आर. 1953 सर्वोच्च न्यायालय 468 — संदर्भित, अनुच्छेद 10**
- **भीमप्पा चन्दप्पा होसमानी बनाम कर्नाटक राज्य, (2006) 11 एस.सी.सी. 323 — संदर्भित, अनुच्छेद 18**

आपराधिक अपीलीय अधिकारिता : आपराधिक अपील संख्या 1165 वर्ष 2009

पटना उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील संख्या 62 वर्ष 1988 में दिनांक 11.09.2008 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

अपीलकर्ता की ओर से : ए.के. श्रीवास्तव एवं संजय वर्मा (अंभोज कुमार सिन्हा की ओर से)

उत्तरदाता की ओर से : चन्दन कुमार (गोपाल सिंह की ओर से)

न्यायालय का निर्णय

स्वतंत्र कुमार, न्यायमूर्ति 1. दिनांक 14 दिसम्बर, 1985 को लगभग प्रातः 11:00 बजे थाना नालन्दा के उप-निरीक्षक द्वारा मन्नू साव के कथन पर एक फर्दबयान दर्ज किया गया। उसने सूचना दी कि वह अपनी पत्नी बिमला देवी के साथ ग्राम मोहनपुर स्थित अपनी कृषि भूमि पर बनी झोपड़ी में रहता है। उसके पास कृषि भूमि थी और वह कृषि कार्य करता था।

उसी दिन लगभग प्रातः 9:00 बजे वह किसी निजी कार्य से नालन्दा गया था। लगभग 10:00 बजे जब वह अपनी झोपड़ी पर वापस लौटा, तब उसने देखा कि उसकी पत्नी बिमला देवी उसकी झोपड़ी के सामने मिर्च के खेत में जली हुई अवस्था में पड़ी है। उसके शरीर पर गंभीर जलन की चोटें थीं, तथापि उस समय मन्नू साव को वह कुछ हद तक जीवित प्रतीत हुई। उसने उसके उपचार हेतु चिकित्सक के पास ले जाने के लिए भोला बाबू से सहायता माँगी। किन्तु उपचार हेतु ले जाए जाने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। इन परिस्थितियों में जब वह थाना जाने की योजना बना रहा था, तभी उप-निरीक्षक हृदय नारायण सिंह, जिन्हें बाद में पी.डब्ल्यू.-4 के रूप में परीक्षित किया गया, वहाँ पहुँच गए। अन्वेषण पदाधिकारी ने पंचनामा की कार्यवाही प्रारम्भ की और शव को शव परीक्षण हेतु सदर अस्पताल, बिहारशरीफ भेज दिया। शव परीक्षण किया गया और दिनांक 14 दिसम्बर, 1985 को उसकी रिपोर्ट प्रदर्श-4 तैयार की गई। उसमें यह पाया गया कि मृतका को जलने की चोटें थीं, उसकी दोनों आँखें बन्द थीं तथा उसकी जीभ बाहर निकली हुई थी। शव परीक्षण प्रतिवेदन को ध्यान में रखते हुए अन्वेषण पदाधिकारी के मन में संदेह उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात शव परीक्षण प्रतिवेदन के आधार पर प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज किया गया। उसमें यह पाया गया कि बिमला देवी की मृत्यु गला दबाने तथा जीवनकालीन चोटों के कारण हुई थी तथा साक्ष्य को लुप्त करने के उद्देश्य से उसके शव को जला दिया गया था। प्रथम सूचना प्रतिवेदन प्रदर्श-5 था और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 एवं 201 के अंतर्गत मामला पंजीकृत किया गया। इस अपराध का संदेह स्वयं मन्नू साव, जो वर्तमान अपीलकर्ता है, पर किया गया। अन्वेषण पदाधिकारी ने चिकित्सक सहित अन्य साक्षियों के कथन दर्ज किए और सक्षम न्यायालय के समक्ष आरोपपत्र प्रस्तुत किया। अपीलकर्ता पर उपर्युक्त दोनों अपराधों के आरोप लगाए गए। उसने स्वयं को निर्दोष बताया और उसका विचारण किया गया। अभियोजन ने केवल चार साक्षियों का परीक्षण कराया— पी.डब्ल्यू.-1 एवं पी.डब्ल्यू.-2 – सह-

ग्रामीण, पी.डब्ल्यू.-3 – डॉ. सिद्धू भूषण सिंह, तथा पी.डब्ल्यू.-4 – हृदय नारायण सिंह, अन्वेषण पदाधिकारी। विचारण न्यायालय ने दिनांक 21 दिसम्बर, 1987 के निर्णय द्वारा अभियुक्त को दोनों अपराधों के लिए दोषी ठहराया तथा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आजीवन कठोर कारावास तथा धारा 201 के अंतर्गत तीन वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया। दोनों दण्ड एक साथ चलने का आदेश दिया गया। विचारण न्यायालय के इस निर्णय को पटना उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई, किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की तथा दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को यथावत् बनाए रखा। उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 11 सितम्बर, 2008 को पारित निर्णय के परिणामस्वरूप वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई।

2. विवादित निर्णय को चुनौती देते हुए हमारे समक्ष यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और अभियोजन अपराध के किए जाने तथा उसमें अपीलकर्ता की संलिप्तता सिद्ध करने वाली घटनाओं एवं परिस्थितियों की पूर्ण श्रृंखला स्थापित करने में असफल रहा है। यह भी तर्क दिया गया कि ऐसा कोई प्रेरक कारण सिद्ध नहीं किया गया जिससे यह माना जा सके कि अपीलकर्ता ने यह अपराध किया होगा। अंततः यह भी कहा गया कि यह मृतका द्वारा आत्महत्या का स्पष्ट मामला था तथा अभिलेख पर ऐसा कोई ठोस साक्ष्य उपलब्ध नहीं था जिसके आधार पर अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा दिए गए निष्कर्षों तक पहुँचा जा सके।

3. इस तथ्य को लेकर कोई विवाद नहीं हो सकता कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है, क्योंकि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में भी अभियुक्त को दण्डित किया जा सकता है, यदि अभियोजन संदेह से परे घटनाओं एवं परिस्थितियों की ऐसी पूर्ण श्रृंखला सिद्ध कर दे जो स्पष्ट

रूप से संदिग्ध अथवा अभियुक्त की संलिप्तता एवं दोष की ओर संकेत करती हो। केवल इस कारण कि मामले में कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, अभियुक्त दोषमुक्ति का अधिकारी नहीं हो जाता। यह भी समान रूप से सत्य है कि स्वीकृत विधिक सिद्धांतों की पूर्ति होने पर अभियुक्त को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया जा सकता है।

4. *शरद बनाम महाराष्ट्र राज्य* [ए.आई.आर. 1984 सर्वोच्च न्यायालय 1622] के मामले में तीन न्यायमूर्तियों की पीठ ने निम्नलिखित प्रतिपादित किया :

"152. उच्च न्यायालय द्वारा उद्धृत मामलों पर चर्चा करने से पूर्व हम उन कुछ निर्णयों का उल्लेख करना उचित समझते हैं जो केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित आपराधिक मामलों में आवश्यक साक्ष्य की प्रकृति, स्वरूप एवं अनिवार्यता को स्पष्ट करते हैं। इस विषय पर इस न्यायालय का सर्वाधिक मौलिक एवं आधारभूत निर्णय *हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य* है। इस निर्णय का बाद के अनेक निर्णयों में निरन्तर अनुसरण एवं अनुप्रयोग किया गया है, जैसे *तुफैल उर्फ सिम्मी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* तथा *रामगोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य* । हनुमंत के मामले में महाजन, न्यायमूर्ति द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को उद्धृत करना उपयोगी होगा

> "यह स्मरण रखना चाहिए कि जिन मामलों में साक्ष्य परिस्थितिजन्य प्रकृति का हो, वहाँ जिन परिस्थितियों से दोष का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें प्रथम दृष्टया पूर्ण रूप से सिद्ध किया जाना चाहिए तथा इस प्रकार सिद्ध सभी तथ्य केवल अभियुक्त के दोषी होने की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए।
>
> पुनः, वे परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति एवं प्रवृत्ति की होनी चाहिए तथा ऐसी होनी चाहिए कि वे उस परिकल्पना के अतिरिक्त प्रत्येक अन्य परिकल्पना को समाप्त कर दें जिसे सिद्ध किया जाना है। दूसरे शब्दों में, साक्ष्य की ऐसी पूर्ण श्रृंखला होनी

चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप किसी भी युक्तिसंगत निष्कर्ष के लिए कोई आधार शेष न रहे तथा यह प्रदर्शित होना चाहिए कि सामान्य मानवीय संभावनाओं के अनुसार उक्त कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।"

153. उपर्युक्त निर्णय का सूक्ष्म विश्लेषण यह दर्शाता है कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध मामला पूर्ण रूप से स्थापित माना जाने से पूर्व निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है :

(1) जिन परिस्थितियों से दोष का निष्कर्ष निकाला जाना है, वे पूर्ण रूप से सिद्ध होनी चाहिए।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि इस न्यायालय ने कहा है कि संबंधित परिस्थितियाँ "अवश्य" अथवा "होनी चाहिए" के स्तर पर सिद्ध होनी चाहिए, न कि केवल "हो सकती हैं" के स्तर पर। "सिद्ध हो सकती हैं" तथा "सिद्ध होनी चाहिए" के बीच केवल व्याकरणिक ही नहीं, बल्कि विधिक अंतर भी है, जैसा कि इस न्यायालय ने *शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य* में कहा था :

"निश्चित रूप से यह एक मूलभूत सिद्धांत है कि किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि करने से पूर्व अभियुक्त का दोषी होना केवल संभावित नहीं, बल्कि निश्चित होना चाहिए। 'हो सकता है' और 'अवश्य है' के बीच की मानसिक दूरी अत्यन्त व्यापक है और यही दूरी अस्पष्ट अनुमान तथा सुनिश्चित निष्कर्ष के बीच विभाजन रेखा है।"

(2) इस प्रकार सिद्ध तथ्य केवल अभियुक्त के दोषी होने की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए; अर्थात् उनका स्पष्टीकरण किसी अन्य परिकल्पना के आधार पर संभव नहीं होना चाहिए।

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति एवं प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

(4) वे सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना के अतिरिक्त प्रत्येक संभावित परिकल्पना को समाप्त कर दें।

(5) साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप किसी भी युक्तिसंगत निष्कर्ष के लिए कोई आधार शेष न रहे तथा यह प्रदर्शित करे कि सामान्य मानवीय संभावनाओं के अनुसार उक्त कृत्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।

154. यदि ऐसा कहा जाए तो ये पाँच स्वर्णिम सिद्धांत परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामलों में प्रमाण के *पंचशील* का निर्माण करते हैं।"

5. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में इस न्यायालय ने ऐसे मामलों में भी अभियुक्त को दोषी ठहराया है जहाँ चिकित्सकीय साक्ष्य अभियोजन के मामले का पूर्ण समर्थन नहीं करते थे। *अनंत लागू बनाम बम्बई राज्य* [ए.आई.आर. 1960 सर्वोच्च न्यायालय 500] के मामले में, जहाँ मृतक की मृत्यु विषप्रयोग से हुई थी, न्यायालय ने कहा कि विष को पृथक कर उसकी पहचान करने की प्रक्रिया में अनेक ऐसे कारक होते हैं जो सफल निष्कर्ष के मार्ग में बाधक हो सकते हैं। न्यायालय ने यह भी कहा कि जहाँ परिस्थितियाँ प्रायः त्रुटिरहित निश्चितता के साथ बोलती हैं, वहीं शव परीक्षण तथा रासायनिक विश्लेषण कभी-कभी अत्यधिक भ्रामक भी सिद्ध हो सकते हैं। निस्संदेह, चिकित्सकीय परीक्षण के नकारात्मक निष्कर्षों को उचित महत्व दिया जाना चाहिए तथा उस चिकित्सक की कार्य-सीमाओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए जिसने परीक्षण किया है। किन्तु उसकी असफलता को मामले का अंतिम निष्कर्ष नहीं माना जा सकता, क्योंकि यदि परिस्थितिजन्य साक्ष्य सशक्त एवं विश्वसनीय हों तो उनसे दोष का ऐसा अपरिहार्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सके।

6. इसी प्रकार का दृष्टिकोण इस न्यायालय की पीठ ने *दयानिधि बिसोई बनाम उड़ीसा राज्य* [ए.आई.आर. 2003 सर्वोच्च न्यायालय 3915] में अपनाया था, जहाँ परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि करते हुए मृत्युदण्ड को भी 'अत्यन्त विरलतम में विरल' श्रेणी का मामला मानकर पुष्टि की गई थी। न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि केवल एक परिस्थिति अथवा कुछ परिस्थितियाँ अपने आप में दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकतीं। किन्तु जब अभियुक्त के विरुद्ध प्रस्तुत सभी परिस्थितियाँ संदेह से परे सिद्ध हो जाती हैं, तब दोषसिद्धि अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए और अन्य सहायक परिस्थितियों का उपयोग अभियोजन के मामले की पुष्टि के लिए किया जा सकता है।

7. न्यायालय के लिए यह परीक्षण करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में अपेक्षित सभी आवश्यक तत्व उसके समक्ष विचाराधीन मामले में सिद्ध हुए हैं अथवा नहीं। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों का अत्यधिक सावधानी के साथ तथा अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्यों के सूक्ष्म परीक्षण द्वारा निर्णय किया जाना चाहिए। तभी न्यायालय अपराध के आवश्यक अवयवों के संदर्भ में साक्ष्यों का समुचित विश्लेषण कर उचित निष्कर्ष तक पहुँच सकता है। विशेष रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में, अभियोजन के संपूर्ण मामले के अतिरिक्त, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्त द्वारा दिया गया कथन भी अत्यंत महत्वपूर्ण सहायता प्रदान कर सकता है।

8. अब धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता की आवश्यक विशेषताओं तथा उन विधिक सिद्धांतों का परीक्षण किया जाए जो इसके उचित प्रयोग एवं इसके परिणामों के संबंध में मार्गदर्शक हैं। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्त का कथन अभिलिखित करने का उद्देश्य अभियुक्त के विरुद्ध उपलब्ध समस्त दोषारोपक साक्ष्यों को उसके समक्ष रखना है, ताकि उसे उन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण देने का अवसर मिल सके।

साथ ही, यदि वह चाहे तो अपराध में अपनी संलिप्तता अथवा असंलिप्तता के संबंध में अपना पक्ष अथवा कारण भी प्रस्तुत कर सके। न्यायालय को अभियुक्त का परीक्षण करने का अधिकार है, किन्तु केवल अभियोजन साक्ष्य की समाप्ति के पश्चात। यह न्यायालय का अनिवार्य दायित्व है और इसका पालन सुनिश्चित करने के साथ-साथ न्यायालय को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अभियुक्त को अपने आचरण का स्पष्टीकरण देने का निष्पक्ष अवसर प्राप्त हो। अभियुक्त के पास यह विकल्प होता है कि वह मौन रहे और साधारण अस्वीकारोक्ति करे अथवा वैकल्पिक रूप से अपराध में अपनी कथित संलिप्तता के संबंध में अपना संस्करण और उसके कारण प्रस्तुत करे। यह ऐसा कथन है जिसे अभियुक्त बिना किसी भय के देता है तथा विपक्षी पक्ष को उसका प्रतिपरीक्षण करने का अधिकार नहीं होता। तथापि, यदि अभियुक्त द्वारा दिए गए कथन असत्य पाए जाते हैं, तो न्यायालय प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने तथा विधि के अनुसार आवश्यक परिणामी आदेश पारित करने का अधिकारी है। इस प्रावधान का प्रमुख उद्देश्य न्यायालय और अभियुक्त के बीच प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करना तथा अभियुक्त के समक्ष प्रत्येक महत्वपूर्ण दोषारोपक साक्ष्य रखना और उसे उसका उत्तर देने एवं स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर देना है। एक बार ऐसा कथन अभिलिखित हो जाने के पश्चात अगला प्रश्न यह होता है कि जांच एवं विचारण के दौरान ऐसे कथन का किस सीमा तक और किन परिणामों के लिए उपयोग किया जा सकता है। समय के साथ न्यायालयों ने इस अवधारणा को स्पष्ट किया है और अब यह आपराधिक न्यायशास्त्र के क्षेत्र में लगभग निश्चित रूप से स्थापित सिद्धांत बन चुकी है। अभियुक्त के कथन का उपयोग, यदि उसमें कोई दोषमुक्तिकारी स्वीकारोक्ति निहित हो, तो उसकी सत्यता की परीक्षा करने के लिए किया जा सकता है। ऐसे कथन को किसी भी जांच अथवा विचारण में विचारार्थ लिया जा सकता है, किन्तु वह अपने आप में विधिवत् साक्ष्य नहीं होता। धारा 313(4) के प्रावधान स्पष्ट रूप से यह उपबंध करते हैं कि अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों को ऐसी जांच अथवा विचारण में

विचारार्थ लिया जा सकता है तथा किसी अन्य अपराध के संबंध में किसी अन्य जांच अथवा विचारण में उसके विरुद्ध साक्ष्य के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है, यदि वे उत्तर यह प्रदर्शित करते हों कि उसने ऐसा अपराध किया है। अर्थात्, संहिता के अनुसार इसका उपयोग अनुमेय है, किन्तु उसकी अपनी सीमाएँ हैं। न्यायालय अभियुक्त के कथन के किसी भाग पर विश्वास कर सकता है तथा अभियोजन द्वारा प्रस्तुत अन्य साक्ष्यों के साथ उसका मूल्यांकन करते हुए अभियुक्त को दोषी ठहरा सकता है। किन्तु धारा 313 के अंतर्गत दिए गए कथनों को पृथक रूप से नहीं, बल्कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के साथ संयुक्त रूप से देखा जाना चाहिए। न्यायालयों ने अपने निर्णयों में यह महत्वपूर्ण सावधानी भी व्यक्त की है कि केवल धारा 313 के अंतर्गत दिए गए कथन के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा कथन स्वतंत्र एवं ठोस साक्ष्य नहीं माना जाता।

विजेन्द्रजीत अयोध्या प्रसाद गोयल बनाम बम्बई राज्य [ए.आई.आर. 1953 सर्वोच्च न्यायालय 247] में न्यायालय ने निम्नलिखित कहा :

> "3. ... चूँकि अपीलकर्ता ने यह स्वीकार किया था कि गोदाम उसके नियंत्रण में था, इसलिए उस बिंदु पर अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट अभियोजन के उस कथन के समर्थन में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 342 के अंतर्गत अभियुक्त द्वारा दिए गए कथन का संदर्भ लेने के लिए पूर्णतः न्यायोचित था कि गोदाम उसके कब्जे में था। यह तर्क कि मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त के कथन के दोषारोपक भाग का उपयोग किया और दोषमुक्तिकारी भाग को अलग कर दिया, सही प्रतीत नहीं होता। धारा 342 के अंतर्गत दिया गया कथन दो भागों—एक दोषारोपक और दूसरा दोषमुक्तिकारी—में विभाजित नहीं था। वह दो तथ्यों से संबंधित था।

अभियुक्त ने यह स्वीकार किया था कि गोदाम उसके नियंत्रण में था, किन्तु उसने यह अस्वीकार किया कि संशोधित स्पिरिट उसी गोदाम में मिली थी। उसका कहना था कि संशोधित स्पिरिट गोदाम के बाहर मिली थी। उसके कथन का यह भाग अभियोजन साक्ष्य द्वारा असत्य सिद्ध कर दिया गया था और उसका गोदाम के कब्जे संबंधी कथन से कोई घनिष्ठ संबंध नहीं था।"

9. इसी प्रकार के सिद्धांत का उल्लेख इस न्यायालय के अपेक्षाकृत नवीन निर्णय अजय सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2007) 12 एस.सी.सी. 341] में भी किया गया है, जिसमें न्यायालय ने निम्नलिखित कहा :

"11. जहाँ तक अभियोजन के इस मामले का प्रश्न है कि अभियुक्त के वस्त्रों पर मिट्टी का तेल पाया गया था, यह उल्लेखनीय है कि इस संबंध में अभियुक्त से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत परीक्षण के समय कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था।

12. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 का उद्देश्य उसके प्रारम्भिक शब्दों से ही स्पष्ट है— 'अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से उसके विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट हुई परिस्थितियों का स्पष्टीकरण देने में सक्षम बनाने के लिए'। हते सिंह भगत सिंह बनाम मध्य भारत राज्य में न्यायमूर्ति बोस ने (ए.आई.आर. पृष्ठ 469, अनुच्छेद 8) यह प्रतिपादित किया कि धारा 313 के अंतर्गत अभिलिखित अभियुक्त का कथन 'विचारण में विचार किए जाने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषयों में से एक है'। उन्होंने कहा था :

"8. ... अभियुक्तों के वे कथन, जो प्रतिबद्ध मजिस्ट्रेटों तथा सत्र न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित किए जाते हैं, भारत में उस कथन का स्थान लेते हैं जिसे इंग्लैंड और अमेरिका में अभियुक्त स्वयं गवाह-पट्टी पर खड़े होकर अपने शब्दों में कह सकता है; अतः उन्हें साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए, साक्ष्य के रूप में माना जाना चाहिए तथा विचारण के दौरान समुचित रूप से उन पर विचार किया जाना चाहिए।"

यह स्थिति दण्ड प्रक्रिया संहिता में धारा 315 जोड़े जाने के पश्चात भी अपरिवर्तित बनी हुई है और धारा 313 के अंतर्गत दिए गए किसी भी कथन पर उसी प्रकार विचार किया जाना चाहिए मानो धारा 315 अस्तित्व में ही न हो।

13. इस धारा के अंतर्गत परीक्षण का उद्देश्य अभियुक्त को उसके विरुद्ध बनाए गए मामले का स्पष्टीकरण देने का अवसर प्रदान करना है। इस कथन को उसकी निर्दोषता अथवा दोषसिद्धि के मूल्यांकन में विचारार्थ लिया जा सकता है। जहाँ अभियुक्त पर किसी तथ्य को सिद्ध करने का भार हो, वहाँ यह मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि उसका कथन उस भार का निर्वहन करता है या नहीं।"

10. अभियुक्त द्वारा किया गया कथन विचारण में प्रयुक्त किया जा सकता है, यद्यपि सीमित सीमा तक। परन्तु विधि न्यायालय पर यह दायित्व भी अधिरोपित करती है कि वह अभियुक्त द्वारा अपने कथन में लिए गए रुख पर विचार करे तथा उसका निष्पक्ष एवं समग्र मूल्यांकन करे। विधि का यह सिद्धांत इस न्यायालय द्वारा *हते सिंह भगत सिंह बनाम मध्य भारत राज्य* [ए.आई.आर. 1953 सर्वोच्च न्यायालय 468] में प्रतिपादित किया गया था।

11. अब हम दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्त द्वारा दिए गए कथन के प्रासंगिक भाग का परीक्षण करते हैं, क्योंकि इससे न्यायालय के समक्ष विद्यमान विवाद का कुछ सीमा तक संकुचन हो जाएगा। अपीलकर्ता ने स्पष्ट तथा निर्विवाद शब्दों में स्वीकार किया कि मृतका उसकी पत्नी थी तथा उसकी मृत्यु जलने से हुई थी। न्यायालय द्वारा अभियुक्त से बहुत कम प्रश्न पूछे गए थे। उनमें से दो महत्वपूर्ण प्रश्न तथा उनके उत्तर इस प्रकार हैं :

> प्रश्न : अभियोजन का मामला यह है कि आपने हत्या करने के पश्चात हत्या के साक्ष्य को नष्ट करने के उद्देश्य से शव को आग लगा दी तथा स्वयं को दण्ड से बचाने के लिए साक्ष्य मिटाने का प्रयास किया।
>
> उत्तर : नहीं।
>
> प्रश्न : आपने सूचना में कहा था कि आपकी पत्नी बिमला देवी की मृत्यु आग से जलने के कारण हुई। किन्तु शव परीक्षण में पाया गया है कि उसकी मृत्यु गला दबाने के कारण हुई। इस संबंध में आप क्या कहना चाहते हैं?
>
> उत्तर : मैंने पुलिस को जलने के संबंध में सूचना दी थी। उसकी हत्या नहीं की गई है। यह कहना गलत है कि उसकी मृत्यु गला दबाने के कारण हुई।

12. जैसा कि उपर्युक्त उत्तरों से स्पष्ट है, अपीलकर्ता इस तथ्य का विवाद नहीं करता कि मृतका उसकी पत्नी थी तथा उसकी मृत्यु जलने से हुई थी। किन्तु उसका संस्करण यह है कि मृतका ने स्वयं अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़ककर आत्महत्या कर ली थी। दूसरी ओर, अभियोजन का मुख्य आधार पीडब्ल्यू-3 का कथन था, जिसके अनुसार यह मामला मृतका का गला घोंटकर उसकी हत्या करने तथा उसके पश्चात शव को जलाने का था। विचारण न्यायालय ने भी इन तथ्यों पर विचार किया तथा उनका विस्तृत उल्लेख किया। साथ ही, उसने अभियुक्त

की ओर से प्रस्तुत अधिवक्ता के तर्कों और अभियुक्त की स्वीकारोक्तियों का भी संज्ञान लिया। विचारण न्यायालय के निर्णय के अनुच्छेद 8 और 9 में दर्ज निष्कर्षों का उल्लेख करना उपयोगी होगा :

> "8. यह मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है क्योंकि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। घटना अभियुक्त के स्वामित्व वाली झोपड़ी में घटित हुई थी। घटना के संबंध में अभियुक्त का प्रारम्भिक रुख यह था कि उसकी पत्नी बिमला देवी ने उसकी अनुपस्थिति में अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़ककर आत्महत्या कर ली थी। अभियोजन द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्यों तथा परिस्थितियों पर विचार करने से पूर्व मैं उन कुछ तथ्यों का उल्लेख आवश्यक समझता हूँ जिनका इस मामले में न तो खंडन किया गया है और न ही विवाद किया गया है। प्रतिरक्षा पक्ष के अधिवक्ता ने इस तथ्य का विवाद नहीं किया कि मृतका बिमला देवी अभियुक्त मन्नू साव की पत्नी (रखैल) थी तथा अभियुक्त उसके साथ ग्राम मोहनपुर स्थित अपनी झोपड़ी में रहता था। यह भी विवादित नहीं है कि उक्त महिला की मृत्यु हुई थी तथा उसके शरीर पर जलने के घाव थे। मन्नू साव द्वारा सूचक के रूप में दिए गए कथन के आधार पर एक अप्राकृतिक मृत्यु का मामला दर्ज किया गया था, जिसे बाद में बिमला देवी के शव के शव परीक्षण प्रतिवेदन (प्रदर्श-2) प्राप्त होने पर थाना प्रभारी की लिखित रिपोर्ट के आधार पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302/201 के अंतर्गत परिवर्तित कर दिया गया।"

9. प्रदर्श-6 से प्रतीत होता है कि थाना प्रभारी पीडब्ल्यू-4 को ग्राम मोहनपुर में अभियुक्त की झोपड़ी के निकट एक महिला के जली हुई अवस्था में पड़े होने की सूचना मिलने पर उन्होंने स्टेशन डायरी में प्रविष्टि करने के पश्चात घटनास्थल का दौरा किया।

पीडब्ल्यू-4 हृदय नारायण सिंह, जो उस समय थाना प्रभारी थे, घटनास्थल पर पहुँचे और उन्होंने पाया कि सूचक की झोपड़ी के निकट मिर्च के खेत में एक महिला का शव पड़ा हुआ था तथा उसके शरीर पर जलने के घाव थे। अभियुक्त मन्नू साव ने बताया कि वह प्रातः 9:30 बजे तक वहाँ उपस्थित था तथा जब वह 10:30 बजे वापस लौटा तो उसने अपनी पत्नी बिमला देवी को अपनी झोपड़ी के निकट मिर्च के खेत में जली हुई अवस्था में पड़ा पाया। उसने यह भी बताया कि उसे झोपड़ी के समीप स्थित कुएँ से लेकर झोपड़ी के दरवाजे तक मिट्टी के तेल के निशान दिखाई दिए ....”

13. उपरोक्त निर्विवाद स्थिति के आलोक में अब यह परीक्षण किया जाए कि क्या अभियोजन ने घटनाओं एवं परिस्थितियों की पूर्ण श्रृंखला को संदेह से परे सिद्ध किया है।

14. मामले के इस पहलू पर भी विचारण न्यायालय ने विस्तार से विचार किया था। उसे सम्पूर्ण साक्ष्य अभिलिखित करने, साक्षियों के आचरण एवं व्यवहार का अवलोकन करने तथा विशेषज्ञ साक्षियों का मूल्यांकन करने का लाभ प्राप्त था। अनुच्छेद 19 और 20 में विचारण न्यायालय ने इन परिस्थितियों का समुचित ढंग से उल्लेख किया है। वे इस प्रकार हैं :

> “19. यह सत्य है कि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, किन्तु ऐसी परिस्थितियाँ विद्यमान हैं जो संदेह से परे यह सिद्ध करती हैं कि अभियुक्त ने अपनी पत्नी की हत्या की तथा दण्ड से बचने और मृत्यु के साक्ष्य को नष्ट करने के उद्देश्य से शव को आग लगा दी और यह कहानी गढ़ी कि उसकी पत्नी ने 14.12.1985 को प्रातः 9 बजे से 10:30 बजे के बीच स्वयं को जलाकर आत्महत्या कर ली थी।
>
> 20. निम्नलिखित परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि अपराध अभियुक्त ने ही किया था :

(1) जब गला दबाने की घटना हुई, उस समय अभियुक्त अपनी पत्नी के साथ झोपड़ी में पाया गया था। पीडब्ल्यू-3 के अनुसार गला दबाने की घटना 13/14.12.1985 की रात्रि में हुई थी।

(2) अभियुक्त ने अपने फर्दबयान में झूठी सूचना दी और यह कहानी प्रस्तुत की कि उसकी पत्नी ने स्वयं को आग लगाकर आत्महत्या की थी, जिसके आधार पर अप्राकृतिक मृत्यु का मामला दर्ज किया गया। मृतका बिमला देवी की मृत्यु जलने से नहीं बल्कि गला दबाने के कारण हुई थी, जो अभियुक्त के कृत्य का परिणाम थी। जलने की चोटें मरणोपरांत थीं।

(3) अभियुक्त ने घटना की कोई सूचना पुलिस को नहीं दी। पुलिस अपनी स्वतंत्र सूचना के आधार पर घटनास्थल पर पहुँची, जहाँ मन्नू साव (अभियुक्त) ने बताया कि उसकी पत्नी ने आत्महत्या कर ली है। यदि वास्तव में ऐसा था तो उसे तत्काल पुलिस को सूचना देनी चाहिए थी। यह बात भी विश्वास योग्य नहीं है कि उसने इस संबंध में भोला पासवान को सूचना दी थी, क्योंकि प्रतिरक्षा के इस कथन को सिद्ध करने हेतु भोला पासवान को साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया।

(4) पंचनामा प्रतिवेदन तथा पीडब्ल्यू-3 चिकित्सक की गवाही से स्पष्ट है कि मृतका की जीभ बाहर निकली हुई एवं सूजी हुई थी। दाहिनी पार्श्विका अस्थि (पैराइटल स्कल बोन) में फ्रैक्चर था तथा स्वरयंत्र और श्वासनली में रक्तसंचय था। पीडब्ल्यू-3 ने इस संभावना से स्पष्ट रूप से इंकार किया कि मृतका स्वयं अपना गला दबा सकती थी।

(5) घटना का उद्देश्य भी स्पष्ट है। साक्ष्य से यह सिद्ध है कि अभियुक्त की जाति के लोग बिमला देवी को अपने साथ रखने के उसके व्यवहार का विरोध करते थे। प्रतिरक्षा पक्ष के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मृतका के पिता अथवा उसके परिवार के सदस्यों की संलिप्तता से इंकार नहीं किया जा सकता। किन्तु अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि मृतका के पिता ने कभी विरोध किया था। इसके विपरीत यह साक्ष्य उपलब्ध है कि अभियुक्त का यह आचरण निरंतर उसकी अपनी जाति के लोगों द्वारा विरोध का विषय था।

(6) यदि महिला ने वास्तव में स्वयं को आग लगाई होती, जैसा कि उसके पति (अभियुक्त) ने कहानी गढ़ी है, तो वह अपने शरीर पर ऐसी चोटें कैसे पहुँचा सकती थी और शव परीक्षण में चिकित्सक द्वारा पाई गई गला दबाने की स्थिति कैसे उत्पन्न हो सकती थी?

(7) प्रतिरक्षा पक्ष के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पुलिस द्वारा अभिलिखित अभियुक्त का फर्दबयान ग्राह्य नहीं है और उसका उपयोग उसके विरुद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि वह कथन पुलिस अधिकारी के समक्ष दिया गया था। यह मामला अभियुक्त के फर्दबयान के आधार पर दर्ज नहीं किया गया है, बल्कि पीडब्ल्यू-4 के कथन एवं लिखित सूचना के आधार पर दर्ज किया गया है। अप्राकृतिक मृत्यु मामले की रिपोर्ट तथा मन्नू साव द्वारा दी गई सूचना को अभियुक्त की प्रथम सूचना अथवा स्वीकारोक्ति के समकक्ष नहीं माना जा सकता। यह कथन उसने उस समय दिया था जब वह अभियुक्त नहीं बल्कि सूचक था। अतः मैं इस तर्क में कोई सार नहीं पाता।

इसके अतिरिक्त अभियुक्त ने अपने पूर्व कथन से भी इंकार नहीं किया है और धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दिए गए अपने कथन में भी यह स्वीकार किया है कि उसने अपनी पत्नी द्वारा स्वयं को आग लगाकर आत्महत्या करने की सूचना दी थी।"

15. विचारण न्यायालय द्वारा किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों एवं साक्ष्य के मूल्यांकन में उच्च न्यायालय ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। बल्कि उसने उन निष्कर्षों को दोहराते हुए उनसे अपनी सहमति व्यक्त की।

16. इस तथ्य पर विशेष बल दिया गया कि पीडब्ल्यू-2, जो गाँव का निवासी था, ने अपनी गवाही में कहा कि उसे घटना के बारे में कोई जानकारी नहीं थी और उसने प्रदर्श-1/1 पर अन्वेषण अधिकारी के कहने पर हस्ताक्षर किए थे। किन्तु अभियुक्त इस तथ्य से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि यह साक्षी मुख्यतः मृतका की मृत्यु तथा उसके जले हुए पाए जाने की स्थिति को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया था। अभियोजन के अनुसार भी वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था और ऐसा कोई महत्वपूर्ण तथ्य नहीं था जिसका वह खंडन कर सकता, क्योंकि अभियोजन का मुख्य आधार पीडब्ल्यू-3 और पीडब्ल्यू-4 की गवाही थी। वर्तमान मामले का सबसे महत्वपूर्ण साक्षी पीडब्ल्यू-3 डॉ. सिद्धू भूषण सिंह था, जिसने मृतका का शव परीक्षण किया था। उसने स्पष्ट रूप से अभिमत दिया कि मृतका की हत्या गला दबाकर अथवा गला घोंटकर की गई थी और उसके पश्चात उसके शरीर को जलाया गया था। इस साक्षी के प्रतिपरीक्षण में ऐसा कोई महत्वपूर्ण तथ्य सामने नहीं आया जिससे अभियुक्त के पक्ष को सहायता मिल सके। अभियुक्त ने स्वीकार किया है कि मृतका उसकी पत्नी थी और वह उसके साथ झोपड़ी में

रहती थी। अभिलेख के आधार पर उच्च न्यायालय ने भी यह तथ्य दर्ज किया कि मृतका अपने पूर्व पति से अलग हो चुकी थी और अभियुक्त के साथ रह रही थी, जो स्वयं भी अपने परिवार से अलग रह रहा था। गाँव के लोगों ने मृतका के साथ अभियुक्त के इस प्रकार रहने का विरोध किया था। इन परिस्थितियों में मृतका की मृत्यु का कारण स्पष्ट करने का दायित्व पति अर्थात अभियुक्त पर था। उसने यह स्पष्टीकरण अवश्य दिया कि मृतका ने स्वयं को आग लगाकर आत्महत्या कर ली थी, किन्तु इस स्पष्टीकरण को अस्वीकार कर दिया गया। एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अभियुक्त के अपने कथन के अनुसार, जब उसने मृतका को जीवित अवस्था में तथा जले हुए शरीर के साथ झोपड़ी के बाहर मिर्च के खेत में पड़ा पाया, तब उसने भोला बाबू की सहायता ली थी। किन्तु न तो उसने धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अपने कथन में इस व्यक्ति का नाम लिया और न ही उसे प्रतिरक्षा साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया। सामान्यतः यह अनुमान लगाया जाएगा कि यदि इस साक्षी को प्रस्तुत किया जाता तो वह ऐसा सत्य कथन करता जो अभियुक्त के लिए अनुकूल नहीं होता। अपने सर्वोत्तम ज्ञान के कारणों से, जो कभी स्पष्ट नहीं किए गए, इस साक्षी को प्रस्तुत नहीं किया गया; जबकि धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अंतिम प्रश्न के उत्तर में अभियुक्त ने कहा था कि वह निर्दोष है और जो कुछ कहना चाहता है वह लिखित रूप में प्रस्तुत करेगा। इसके बावजूद अपीलकर्ता द्वारा कोई प्रतिरक्षा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। पीडब्ल्यू-1 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि अभियुक्त मन्नू साव का ट्यूबवेल ग्राम मोहनपुर में उसके खलिहान के उत्तर में स्थित था और बिमला देवी अभियुक्त के साथ रहती थी। घटना के दिन लगभग प्रातः 10 बजे जब वह वहाँ गया तो उसने बिमला देवी को जली हुई अवस्था में देखा। उसके अनुसार पुलिस वहाँ आई और पंचनामा प्रतिवेदन तैयार किया, जिस पर उसने

हस्ताक्षर किए। यह साक्षी एक सत्यवादी साक्षी प्रतीत होता है और उसने अन्वेषण के दौरान पुलिस के समक्ष जो कहा था, उससे न तो कुछ जोड़ा और न ही कुछ घटाया। उसकी गवाही के समक्ष पीडब्ल्यू-2 के शत्रुतापूर्ण घोषित किए जाने का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता। आश्चर्यजनक रूप से, इस साक्षी से प्रतिपरीक्षण में यह प्रश्न तक नहीं पूछा गया कि घटनास्थल पर भोला बाबू उपस्थित था, जिससे अभियुक्त ने मृतका को अस्पताल ले जाने के लिए सहायता माँगी थी।

17. परिणामस्वरूप, तथा किसी भी दृष्टि से, पीडब्ल्यू-3 के प्रतिपरीक्षण से ऐसा कोई तथ्य सामने नहीं आया जो उल्लेखनीय हो, अथवा अभियुक्त के पक्ष में सहायक हो।

पीडब्ल्यू-3 डॉ. सिद्धू भूषण सिंह ने मृत्यु के कारण के संबंध में अपना अभिमत निम्न प्रकार व्यक्त किया :

> "मेरे मतानुसार मृत्यु श्वासावरोध (एस्फिक्सिया), आघात तथा रक्तस्राव के कारण हुई, जो गला दबाने तथा उपर्युक्त वर्णित चोटों का परिणाम था। मृत्यु के पश्चात व्यतीत समय लगभग 12 से 16 घंटे था। दाहिने ललाट भाग पर पाया गया नील-चिह्न किसी कठोर एवं कुंद वस्तु से लगने के कारण संभव था।"

18. उपर्युक्त साक्ष्य उन सभी शर्तों को पूर्ण रूप से संतुष्ट करता है जिन्हें इस न्यायालय ने शरद (उपर्युक्त) के मामले में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों के लिए आवश्यक माना है।

अभियोजन द्वारा सिद्ध की गई परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति की हैं तथा वे किसी अन्य ऐसे दृष्टिकोण की संभावना को समाप्त कर देती हैं जिसे तर्कसंगत एवं युक्तिसंगत रूप से अपनाया जा सके। वास्तविक स्थिति यह है कि मृतका की मृत्यु उस समय हुई जब वह अपीलकर्ता के साथ रह रही थी। ऐसी परिस्थिति में अपीलकर्ता का दायित्व था कि वह अपने आचरण का स्पष्टीकरण

देता तथा मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के अनुरूप मृतका की मृत्यु के कारण के संबंध में कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता।

19. अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि मृतका की हत्या करने का अपीलकर्ता का उद्देश्य क्या था। साक्ष्य से यह तथ्य सामने आया है कि मृतका अपने पूर्व पति को छोड़ चुकी थी और अपीलकर्ता के साथ रह रही थी। अपीलकर्ता भी अपने परिवार से अलग होकर अपने कृषि क्षेत्र में स्थित झोपड़ी में रहता था, जहाँ यह घटना हुई। गाँव के लोगों द्वारा उनके इस प्रकार साथ रहने का स्पष्ट विरोध किया गया था। इस संदर्भ में पीडब्ल्यू-4 का कथन महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सकीय साक्ष्य से भी यह सिद्ध हुआ कि मृतका के शव को जलाए जाने से पूर्व उसका गला दबाया गया था अथवा उसका गला घोंटा गया था। सामाजिक लज्जा अथवा सामाजिक अपमान अपीलकर्ता द्वारा अपराध किए जाने का एक संभावित उद्देश्य हो सकता था। इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता ने न्यायालय के समक्ष यह गलत, यदि असत्य नहीं तो, कथन किया कि घटना उसकी अनुपस्थिति में हुई थी। जिस प्रकार उसने यह कहा कि उसने मृतका को अस्पताल ले जाने हेतु भोला बाबू की सहायता ली थी, उसका यह आचरण भी विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए अपीलकर्ता ने किसी भी साक्षी को प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं किया। अपीलकर्ता ने स्वयं स्वीकार किया है कि मृतका की मृत्यु उसकी आँखों के सामने हुई थी, किन्तु उसने बाद में पुलिस को सूचना देने के अतिरिक्त कोई अन्य कदम नहीं उठाया। विधि के विकास के साथ अब यह एक स्थापित सिद्धांत है कि किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए उद्देश्य (मोटिव) का सिद्ध किया जाना अनिवार्य नहीं है, बशर्ते अभियोजन अपने मामले को संदेह से परे सिद्ध करने में सफल रहा हो। वर्तमान मामले में अभियोजन द्वारा प्रस्तुत उद्देश्य युक्तिसंगत प्रतीत होता है तथा वह उस व्यक्ति के स्वाभाविक व्यवहार के अनुरूप है जो अपीलकर्ता जैसी परिस्थिति में हो। यह विश्वास करना भी

कठिन है कि कोई व्यक्ति बिना किसी उकसावे अथवा घटना के, जो घटना के ठीक पूर्व घटी हो, आत्महत्या कर ले। अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को दोनों न्यायालयों ने उचित रूप से अस्वीकार किया है और हमें इससे भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। इसके अतिरिक्त, भीमप्पा चन्दप्पा होसामनी बनाम कर्नाटक राज्य [(2006) 11 एस.सी.सी. 323] में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अभियोजन के लिए प्रत्येक मामले में उद्देश्य सिद्ध करना अनिवार्य नहीं है, क्योंकि यह अभियुक्त को दोषसिद्ध करने हेतु विचारणीय परिस्थितियों में से केवल एक है। न्यायालय ने कहा :

"**13.** विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों ने प्रथम सूचना प्रतिवेदन में पीडब्ल्यू-1 द्वारा कथित उद्देश्य के संबंध में प्रस्तुत साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया है। वास्तव में स्वयं पीडब्ल्यू-1 ने अपनी गवाही के दौरान ऐसे किसी उद्देश्य के अस्तित्व से इंकार कर दिया था। इस विषय पर उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की है। यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि अभियुक्त का अपराध सिद्ध करने के लिए अभियोजन के लिए उद्देश्य सिद्ध करना आवश्यक नहीं है। उद्देश्य का अस्तित्व केवल उन परिस्थितियों में से एक है जिसे अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखा जाता है। यदि साक्षियों की गवाही सत्य एवं विश्वासयोग्य प्रतीत होती है, तो उद्देश्य सिद्ध करने में विफलता अभियोजन के मामले के लिए घातक नहीं होती। इस विषय पर विधि पूर्णतः स्थापित है।"

20. उपर्युक्त कारणों के आलोक में हमें अपीलाधीन निर्णय में विधिक अथवा अन्य किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती। दोषसिद्धि का निष्कर्ष तथा दण्डादेश दोनों ही किसी हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं करते। अतः यह अपील निरस्त की जाती है।

एन.जे.

अपील निरस्त।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।